[2020] 4 एस.सी.आर. 971

राजस्थान उच्च न्यायालय

बनाम

वेद प्रिया और अन्य

(सिविल अपील संख्या 8933-8934/2017)

18 मार्च, 2020

[एस. ए. बोबडे, मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति बी. आर. गवई और न्यायमूर्ति सूर्यकांत]

न्यायिक सेवा — *परिवीक्षा अवधि — में पुष्टि न होने का आदेश — प्रत्यर्थी संख्या 1 – पूर्व न्यायिक अधिकारी को सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ डिवीजन)-सह-न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया था और उन्हें दो साल की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा गया था — प्रत्यर्थी संख्या 1 के खिलाफ परिवीक्षा अवधि के दौरान न्यायिक कार्यों के निर्वहन में 7 और भ्रष्टाचार के कुछ आरोप थे — जिसके आधार पर सतर्कता पंजीयक को बुलाया गया और उन्होंने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की — उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति ने प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवा की पुष्टि नहीं की — उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने सिफारिशों की पुष्टि की — नतीजतन, उच्च न्यायालय की सिफारिश के आधार पर राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को समाप्त कर दिया - प्रत्यर्थी संख्या. 1 द्वारा रिट याचिका* — उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया और *प्रत्यर्थी संख्या 1* को बहाल करने का निर्देश दिया — *उच्चतम न्यायालय के समक्ष, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने तर्क दिया कि यह उनके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों के बाद अभियोग का मामला था — अपील पर अभिनिर्धारित किया गयाः परिवीक्षा का पूरा उद्देश्य नियोक्ता को परिवीक्षाधीन के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने और किसी विशेष पद के लिए उसकी उपयुक्तता का परीक्षण करने का अवसर प्रदान करना है — उपयुक्तता की वास्तविक परीक्षा कर्तव्यों का वास्तविक प्रदर्शन है जिसे उम्मीदवार के शामिल होने और काम करना शुरू करने के बाद ही लागू किया जा सकता है — वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश परिवीक्षा अवधि के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 1 के प्रदर्शन के समग्र मूल्यांकन पर आधारित है, जो संतोषजनक नहीं पाया गया — ऐसा निष्कर्ष जो एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवाओं से मुक्ति के लिए वैध आधार हो सकता है, संविधान के अनुच्छेद 311 के संदर्भ में जांच आयोजित करने की गारंटी नहीं देता है — इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से यह आरोप लगाना सही नहीं है कि यह उसके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों के बाद अभियोग का मामला था — वर्तमान मामले में यह निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ भी नहीं है कि हटाने के पीछे की प्रेरणा कोई आरोप था — इसके बजाय, यह एक नियमित पुष्टि अभ्यास था — हटाने का आधार आरोप नहीं था, बल्कि यह प्रत्यर्थी के सेवा रिकॉर्ड का एक समग्र मूल्यांकन था — इसलिए उच्च न्यायालय के फैसले को* अपास्त *कर दिया गया।*

भारत का संविधान — *अनुच्छेद 226 – प्रशासनिक पक्ष पर अपने पूर्ण न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय पर उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा* — अभिनिर्धारित *: हालाँकि ऐसे मामलों में रिट क्षेत्राधिकार के दायरे को विस्तृत रूप से चित्रित करना एक निरर्थक कार्य होगा, लेकिन अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दायरा सीमित है और उसे सावधानीपूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए — इस तरह के अधिकार क्षेत्र के विस्तार को 'अपीलीय प्राधिकरण' के रूप में बैठाने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है, और इसलिए इस बात का ध्यान रखा*

जाना चाहिए कि सामग्री के एक ही सेट पर एक और संभावित व्याख्या न की जाए या अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए न्यायालय की राय को प्रतिस्थापित न किया जाए – यह विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय को दी गई जिम्मेदारी और शक्तियों को देखते हुए सच है – पूर्ण न्यायालय का सामूहिक विवेक न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया में उचित सम्मान, महत्व और विचार का पात्र है।

सेवा कानून – परिवीक्षाधीन और पुष्ट कर्मचारी की समाप्ति के बीच अंतर – अभिनिर्धारित : परिवीक्षाधीन और पुष्टि किए गए कर्मचारी की समाप्ति के बीच एक सूक्ष्म, फिर भी मौलिक अंतर है – यद्यपि यह निर्विवाद है कि राज्य किसी भी मामले में मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता है, फिर भी दोनों के बीच न्यायिक दृष्टिकोण में अंतर होना चाहिए - जबकि एक पुष्ट कर्मचारी के मामले में संविधान के अनुच्छेद 311 या सेवा नियमों के तहत संरक्षण को देखते हुए न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा अधिक व्यापक होगा, लेकिन परीक्षण के आधार पर काम करते हुए ऐसे संरक्षण (ओं) से वंचित परिवीक्षाधीनों के मामले में यह सच नहीं हो सकता है - भारत का संविधान - अनुच्छेद 311 ।

सेवा कानून - परिवीक्षाधीनों के रोजगार में बने रहने का अधिकार – अभिनिर्धारित : परिवीक्षाधीनों को पुष्टि होने तक रोजगार में बने रहने का कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं है, और अनुपयुक्त पाए जाने पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा उन्हें कार्यमुक्त किया जा सकता है - यह केवल बहुत ही सीमित श्रेणी के मामलों में है कि ऐसे परिवीक्षार्थी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के तहत सुरक्षा की मांग कर सकते हैं, जैसे कि जब उन्हें इस तरह से 'हटाया' जाता है जो वैकल्पिक क्षेत्रों में उनकी भविष्य की संभावनाओं को पूर्वाग्रहित करता है या उनके चरित्र पर आक्षेप लगाता है उनके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है - ''कलंकात्मक' निष्कासन के ऐसे मामलों में केवल सुनवाई का उचित अवसर अनिवार्य है।

अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अनिर्धाभिरित : 1. प्रत्यर्थी संख्या. 1 की सेवाओं की समाप्ति के आदेश में कहा गया है कि "*राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर ने सभी प्रासंगिक अभिलेखों की जांच करने के बाद यह राय व्यक्त की है कि विचाराधीन व्यक्ति ने अपने अवसरों का पर्याप्त उपयोग नहीं किया है और अन्यथा राजस्थान न्यायिक सेवा में परिवीक्षाधीन के रूप में संतुष्टि देने में भी विफल रहा है।* इन सामग्रियों से यह स्पष्ट है कि न तो कोई विशिष्ट कदाचार प्रत्यर्थी संख्या 1 को जिम्मेदार ठहराया गया है और न ही कोई आरोप लगाया गया है। आदेश परिवीक्षा की अवधि के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 1 के प्रदर्शन के समग्र मूल्यांकन पर आधारित है, जो संतोषजनक नहीं पाया गया था। ऐसा निष्कर्ष जो परिवीक्षाधीन की सेवाओं को समाप्त करने के लिए एक वैध आधार हो सकता है, संविधान के अनुच्छेद 311 के संदर्भ में जांच कराने की गारंटी नहीं देता है। इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से यह आरोप लगाना सही नहीं है कि यह उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के बाद अभियोग का मामला था। [अनुच्छेद 20]

2. यह सच है कि किसी आदेश का रूप यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण नहीं है कि वह सरल है या दंडात्मक। किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सेवा समाप्ति का आदेश भले ही निर्दोष रूप से

लिखा गया हो, लेकिन इसका उद्देश्य परिवीक्षाधीन अधिकारी को दंडित करना भी हो सकता है और उस स्थिति में यह निस्संदेह संविधान के अनुच्छेद 311 का उल्लंघन होगा। इस तरह के आदेश की न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया में न्यायालय हमेशा यह पता लगाने के लिए पर्दा उठा सकता है कि क्या आदेश दंडात्मक परिणामों के साथ परिवीक्षाधीन से मिलने के लिए था या नहीं। यदि न्यायालय को लगता है कि आदेश के पीछे वास्तविक उद्देश्य अधिकारी को 'दंडित' करना था, तो वह सुनवाई के उचित अवसर के अभाव में हमेशा इसे रद्द कर सकता है। [अनुच्छेद 21]

3. वर्तमान मामले में यह निष्कर्ष निकालने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि हटाने के पीछे की प्रेरणा कोई आरोप था। इसके बजाय, यह नियमित पुष्टि अभ्यास था। परिवीक्षाधीन अवधि के दौरान प्रदान की गई सेवाओं का मूल्यांकन 92 अन्य लोगों के साथ पहले प्रत्यर्थी के कार्यकाल के अंत में किया गया था। सतर्कता रिपोर्ट न केवल प्रत्यर्थी संख्या. 1 के लिए, बल्कि कम से कम दस अन्य उम्मीदवारों के लिए भी मांगी गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उद्देश्य यह सत्यापित करना नहीं था कि पहले प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोप साबित हुए थे या नहीं, बल्कि केवल यह पता लगाने के लिए था कि क्या न्यायाधीश से अपेक्षित ईमानदारी के उच्च मानक को देखते हुए, उसकी उपयुक्तता पर पर्याप्त कारण या संभावित बादल थे। [अनुच्छेद 22]

4. अन्यथा भी, यह सत्य नहीं हो सकता है कि केवल इसलिए कि अभिलेख पर बाह्य विचारों के कुछ आरोप विद्यमान थे कि उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को सरल तरीके से समाप्त करने से रोक दिया गया था जब वह परिवीक्षा पर था। परिवीक्षाधीन का असंतोषजनक प्रदर्शन और परिवीक्षा अवधि के अंत में सेवा का परिणामी वितरण, आवश्यक रूप से इस तथ्य से प्रभावित नहीं हो सकता है कि इस बीच परिवीक्षाधीन को विशिष्ट कदाचार, दुर्व्यवहार या दुर्व्यवहार के लिए जिम्मेदार ठहराने वाली कुछ शिकायतें थीं। यदि सेवा समाप्ति के आदेश की उत्पत्ति कदाचार के किसी विशिष्ट कार्य में निहित है, परिवीक्षा अवधि के दौरान कर्तव्यों के सभी संतोषजनक निष्पादन की परवाह किए बिना, न्यायालय छिपे हुए कारण को उजागर करने के लिए अपनी पहुंच के भीतर होगा और यह अभिनिर्धारित करेगा कि समाप्ति का सरल आदेश, वास्तव में, जांच के माध्यम से आरोप (ओं) स्थापित किए बिना परिवीक्षाधीन को दंडित करने का इरादा रखता है। हालांकि, जब नियोक्ता किसी विशिष्ट उदाहरण को नहीं उठाता है और परिवीक्षा की अवधि के दौरान सभी प्रदर्शन के आधार पर अपनी राय बनाता है, तो कार्रवाई का सिद्धांत प्रकृति में दंडात्मक होने के कारण आकर्षित नहीं होगा। इस प्रकार परिवीक्षाधीन पर यह साबित करने की जिम्मेदारी होगी कि उसके खिलाफ की गई कार्रवाई दंडात्मक विशेषताओं की थी। [अनुच्छेद 24]

5. चूंकि प्रत्यर्थी संख्या. 1 यह स्थापित करने में विफल रहा है कि उच्च न्यायालय ने किसी परिभाषित दुराचार के लिए उसे अभिप्रेत किया है या वास्तव में दंडित किया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय का उद्देश्य उपयुक्तता का सत्यापन करना था और प्रथम प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोपों की जांच नहीं करना था। स्वतंत्र रूप से भी, यह न्यायालय यह नहीं पाता है कि आधार आरोप था, लेकिन यह प्रत्यर्थी के सेवा रिकॉर्ड के समग्र मूल्यांकन पर आधारित था। यहां तक कि एक प्रभाव-आधारित दृष्टिकोण अपनाते हुए, यह

न्यायालय यह महसूस नहीं करता है कि गैर-पुष्टि का आदेश या पूर्ववर्ती परिस्थितियां प्रत्यर्थी को पूर्वाग्रहित करेंगी, जो एक उच्च प्रक्रियात्मक आवश्यकता के योग्य है। [अनुच्छेद 26]

परषोतम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ **ए.आई. आर 1958 एससी 36 : [1958] एससीआर 828** ; काज़िया मोहम्मद मुज़्ज़म्मिल बनाम कर्नाटक **राज्य (2010) 8 एससीसी 155 : [2010] 7 एससीआर 1061**; राजेश कुमार श्रीवास्तव बनाम झारखंड राज्य **(2011) 4 एससीसी 447: [2011] 3 एससीआर 823 - पर भरोसा किया गया।**

निर्णय विधि संदर्भ

[2010] 7 एससीआर 1061	**पर भरोसा किया गया ।**	**अनुच्छेद 14**
[2011] 3 एससीआर 823	**पर भरोसा किया गया ।**	**अनुच्छेद 15**
[1958] एससीआर 828	**पर भरोसा किया गया ।**	**अनुच्छेद 19**

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 8933-8934/2017

खण्ड पीठ सिविल रिट याचिका संख्या 1993/2006 और खण्ड पीठ रिट रिव्यू याचिका संख्या 199/2014 में क्रमशः जयपुर बेंच, जयपुर में राजस्थान के लिए उच्च न्यायालय के 19.11.2014 और 16.12.2014 के अंतिम आदेशों से।

पुरूषेंद्र कौरव, सीनियर अधिवक्ता, सुनील कुमार जैन, अभिषेक जैन, अनुराधा मिश्रा, अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता ।

रणबीर सिंह यादव, नितिन मेशराम, डी. सुब्रमण्यम, सुश्री अंजू के. वर्की, श्रीमती प्रतिमा यादव, रितेश पाटिल, अतुल झा, अधिवक्ता प्रत्यर्थीयो के लिए।

न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय दिया गयाः

निर्णय

1. ये सिविल अपीलें राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 16.12.2014 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई हैं, जिसके द्वारा उक्त उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने दिनांक 19.11.2014 के अपने पूर्व आदेश की समीक्षा के लिए एक याचिका खारिज कर दी थी, जिसमें उच्च न्यायालय ने वेद प्रिया (प्रत्यर्थी सं. 1-एक पूर्व न्यायिक अधिकारी) और परिणामी लाभ और वरिष्ठता के साथ उनकी बहाली का निर्देश दिया।

तथ्य

2. प्रत्यर्थी सं. 1 को 16.07.2002 को राजस्थान न्यायिक सेवाओं में भर्ती किया गया था और सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ डिवीजन)-सह-न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें दो साल प्रभावी की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रखा गया था। 02.08.2002, जिसे बाद में 28.07.2004 को दो महीने की और अवधि के लिए बढ़ा दिया गया था।

3. परिवीक्षा अवधि के दौरान कुछ न्यायिक अधिकारियों (प्रत्यर्थी संख्या 1 सहित) के खिलाफ न्यायिक कार्यों के निर्वहन में दुराचार और भ्रष्टाचार के कुछ आरोप प्राप्त हुए थे, जिसके आधार पर राजस्थान उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (सतर्कता) ने रिकॉर्ड के लिए बुलाया और दिनांक 05.08.2004 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट उच्च न्यायालय की प्रशासनिक समिति के समक्ष अन्य सामग्री के साथ पेश की गई थी, जब यह 93 से अधिक परिवीक्षाधीन न्यायाधीशों की पुष्टि प्रक्रिया का कार्य कर रही थी। इस पांच-न्यायाधीशों की समिति ने उनकी सत्यनिष्ठा, ज्ञान, आचरण और व्यवहार का मूल्यांकन करके नियुक्ति के नियमों और शर्तों के अनुसार परिवीक्षाधीनों की उपयुक्तता निर्धारित करने की मांग की। इस प्रक्रिया में समिति ने कई सामग्रियों पर भरोसा किया, जिसमें उनके जिला न्यायाधीशों, निरीक्षण करने वाले न्यायाधीशों, एसीआर के साथ-साथ रजिस्ट्रार द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त रिपोर्ट शामिल थी (सतर्कता)। उचित विचार-विमर्श के बाद, यह सिफारिश की गई कि नब्बे अधिकारियों की सेवाओं की पुष्टि की जाए, एक अधिकारी की परिवीक्षा अवधि बढ़ाई जाए और दो न्यायिक अधिकारियों की सेवाएं (प्रत्यर्थी सं. 1) पुष्टि नहीं की गई। यह रिपोर्ट उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखी गई थी, जिसने 16.09.2004 को सिफारिशों की पुष्टि की। परिणामस्वरूप और उच्च न्यायालय की सिफारिश पर, राज्य सरकार ने दिनांक 30.09.2004 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को समाप्त कर दिया।

4. प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपने न्यायिक पक्ष पर राजस्थान उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और बर्खास्तगी आदेश को रद्द करने के साथ-साथ अपनी सेवाओं की बहाली के लिए एक रिट याचिका दायर की। यह जोरदार ढंग से तर्क दिया गया था कि समाप्ति आदेश दंडात्मक था और व्यक्तिपरक धारणाओं का परिणाम था, और उचित जांच या सुनवाई के बिना दिया गया था।

5. खण्ड पीठ ने यह देखने के लिए कई निर्णयों पर भरोसा किया कि हालांकि पुष्टि के लिए उपयुक्तता निर्धारित करने के लिए परिवीक्षाधीन अवधि का मूल्यांकन आवश्यक था और यह कि एक परिवीक्षाधीन को बिना किसी कारण के हटा दिया जा सकता है, लेकिन इस तरह लिया गया निर्णय हमेशा एक सीमित न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी होगा। यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस प्रकार के आदेशों में कारण नहीं बताए जाने चाहिए क्योंकि इससे कलंक लगाने की संभावना पैदा हुई है, फिर भी यह प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं की समाप्ति के पीछे के वास्तविक कारणों का मूल्यांकन करने के लिए यह निर्धारित करने के लिए आगे बढ़ा कि क्या अपीलार्थी की कार्रवाई मनमाना या अवैध थी। प्रत्यर्थी नं. 1 के 'अच्छे' सेवा-अभिलेख और उसके रिपोर्टिंग प्राधिकारी द्वारा दी गई सकारात्मक प्रतिक्रिया और निरीक्षण करने वाले न्यायाधीशों द्वारा किए गए समर्थन को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने विचार किया कि ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर पूर्ण

न्यायालय प्रत्यर्थी संख्या 1. अपुष्ट आरोपों पर पूर्ण न्यायालय की निर्भरता और वह भी सुनवाई का अवसर दिए बिना, अस्वीकार्य माना गया, जिसने कार्रवाई को दंडात्मक बना दिया। न्यायालय ने तदनुसार समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया और प्रत्यर्थी संख्या 1 की बहाली का निर्देश दिया।

6. बाद में अपीलार्थी द्वारा एक समीक्षा दायर की गई, जिसने तर्क दिया कि खण्ड पीठ रजिस्ट्रार द्वारा प्रस्तुत विशेष रिपोर्ट पर ध्यान देने में विफल रही (सतर्कता)। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि कैसे न्यायिक अधिकारी ने बिना किसी क्षमता के, स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के तहत अपराधों से संबंधित दो मामलों में जमानत दी थी हालाँकि, उच्च न्यायालय ने समीक्षा याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया और इसे यह कहते हुए खारिज कर दिया कि रिट याचिका को अनुमति देते समय उपरोक्त रिपोर्ट को वास्तव में ध्यान में रखा गया था।

पार्टियों के तर्क

7. अपीलार्थी-उच्च न्यायालय की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि समाप्ति आदेश को दंडात्मक या मनमाना या पर्याप्त सामग्री के बिना पारित किया गया नहीं कहा जा सकता है। रजिस्ट्रार (सतर्कता) द्वारा दिनांक 05.08.2004 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट जब रिकॉर्ड पर विभिन्न अन्य सामग्री के साथ पढ़ी गई, तो अपीलकर्ता के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 की अनुपयुक्तता के संबंध में एक राय बनाने के लिए पर्याप्त रूप से उचित थी।

8. तब यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने मामले के गुण-दोष में प्रवेश करने में गलती की और ऐसा करते हुए न्यायिक समीक्षा के दायरे का उल्लंघन किया और एक अपीलीय प्राधिकरण की भूमिका ग्रहण की। विद्वान अधिवक्ता ने निर्णयों की एक श्रृंखला पर भरोसा करते हुए इस बात पर प्रकाश डाला कि यह कानून की एक स्थिर स्थिति थी कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के न्यायिक पक्ष के समक्ष साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता का प्रचार नहीं किया जा सकता था, और ***पटना उच्च न्यायालय बनाम पांडे गजेंद्र प्रसाद***[1] में निर्णय, जहां इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी न्यायिक अधिकारी की बर्खास्तगी के आदेश को रिट अधिकार क्षेत्र के माध्यम से केवल इस आधार पर नहीं बदला जा सकता था कि उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में अच्छी टिप्पणियां थीं, वर्तमान तथ्यों पर पूरी तरह से लागू था।

9. अतीत के उदाहरणों और राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 1955 के प्रावधानों पर भरोसा करते हुए, यह आग्रह किया गया कि अस्थायी कर्मचारियों और परिवीक्षाधीनों की सेवाओं को संविधान के अनुच्छेद 311 के संचालन को आकर्षित किए बिना समाप्त किया जा सकता है। इस बात पर प्रकाश डाला गया कि कैसे किसी दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया था या साबित नहीं किया गया था, और ऐसे परिदृश्य में, एकमात्र सीमित मुद्दा जिस पर ध्यान दिया जा सकता था, वह यह था कि हानिरहित प्रशासनिक निर्णय लेने से पहले विवेक का उचित उपयोग किया गया था या नहीं।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं.1 ने प्रस्तुत किया कि सुनवाई का अवसर कानून के लिए ज्ञात सबसे मौलिक सुरक्षाओं में से एक था, और किसी को भी एक अस्थायी या परिवीक्षाधीन कर्मचारी के रूप में उसकी स्थिति के बावजूद बिना सुने निंदा नहीं की जा सकती थी। ***शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य*** [2] पर भरोसा करते हुए इस बात का समर्थन किया गया कि बिना किसी कारण के परिवीक्षाधीनों की सेवाओं को समाप्त करने की अनुमति देने वाले वैधानिक नियमों या रोजगार शर्तों में निहित प्रावधानों के साथ, यदि किसी को उचित जांच और सुनवाई के उचित अवसर के बिना विशिष्ट आरोपों या अक्षमता के आधार पर आरोपमुक्त किया गया था, तो ऐसी कार्रवाई संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के अर्थ के भीतर सेवा से 'हटाने' के बराबर होगी।

11. वर्तमान अपील तक की विभिन्न घटनाओं का पता लगाते हुए, पहले प्रत्यर्थी ने जोर देकर कहा कि हालांकि समाप्ति स्पष्ट रूप से सरल थी, लेकिन प्रभावी रूप से कलंकित थी। भले ही बर्खास्तगी के लिए कोई स्पष्ट कारण नहीं दिए गए थे, फिर भी पिछली परिस्थितियों ने स्पष्ट कर दिया था कि भ्रष्टाचार या अधिकार क्षेत्र के गलत प्रयोग के कुछ आरोप कार्रवाई का आधार थे, और इसलिए अंतिम निर्णय को ***भारतीय स्टेट बैंक बनाम पलक मोदी***[3] के अनुसार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर अमान्य किया जा सकता था।

12. इसके अलावा, यह आग्रह किया गया कि गुण-दोष के आधार पर भी कोई मामला नहीं बनाया गया, क्योंकि शिकायतकर्ता को विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा मौके पर की गई जांच में नहीं पाया जा सका। अन्य आरोप भी आधारहीन थे और कानून के कुछ कथित उल्लंघनों के लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण प्रदान किए गए थे।

विश्लेषण

13. प्रारंभ में, हम देख सकते हैं कि अपीलार्थी और साथ ही आक्षेपित निर्णय दोनों ने प्रशासनिक पक्ष पर अपने पूर्ण न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णयों पर उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की व्यापकता और व्यापकता के संबंध में विधि के सही कथन को स्पष्ट किया है। हालाँकि ऐसे मामलों में रिट अधिकार क्षेत्र के दायरे को पूरी तरह से चित्रित करना एक व्यर्थ कार्य होगा, लेकिन अनुच्छेद 226 के तहत एक उच्च न्यायालय का दायरा सीमित है और उसे सावधानीपूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। इस तरह के अधिकार क्षेत्र के विस्तार को 'अपीलीय प्राधिकरण' के रूप में बैठाने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है, और इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामग्री के एक ही सेट पर एक और संभावित व्याख्या न की जाए या अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए न्यायालय की राय को प्रतिस्थापित न किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत उच्च न्यायालय को दी गई जिम्मेदारी और शक्तियों को देखते हुए यह विशेष रूप से सच है। पूर्ण न्यायालय का सामूहिक विवेक न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया में उचित सम्मान, महत्व और विचार का पात्र है।

14. वर्तमान मामला वह है जहां पहला प्रत्यर्थी एक परिवीक्षाधीन था न कि एक मूल नियुक्त व्यक्ति, इसलिए अनुच्छेद 311 के दायरे में सख्ती से शामिल नहीं है। इस तरह के परिवीक्षा का उद्देश्य ***काजिया मोहम्मद मुज़म्मिल बनाम कर्नाटक राज्य*** [4] में नोट किया गया हैः

"25. किसी भी परिवीक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कर्मचारी के पुष्ट नियमित कर्मचारी की स्थिति में आने से पहले, उसे संतोषजनक रूप से अपने कर्तव्यों और कार्यों का पालन करना चाहिए

ताकि अधिकारी उचित आदेश पारित कर सकें। दूसरे शब्दों में, परिवीक्षा की योजना परिवीक्षाधीन अधिकारी की क्षमता, उपयुक्तता और प्रदर्शन का न्याय करना है। ... "

15. इसी प्रकार, ***राजेश कुमार श्रीवास्तव बनाम झारखंड राज्य*** [5] में यह राय दी गई थी :

"... एक व्यक्ति को परिवीक्षा पर रखा जाता है ताकि नियोक्ता सेवा में निरंतरता और सेवा में पुष्टि के लिए अपनी उपयुक्तता का निर्णय ले सके। स्थायी आधार पर और पुष्टि के माध्यम से पद धारण करने के लिए किसी व्यक्ति की उपयुक्तता का निर्णय लेने के लिए विभिन्न मानदंड हैं। उस स्तर पर और परिवीक्षा की अवधि के दौरान परिवीक्षाधीन (अपीलार्थी) की कार्रवाई और गतिविधियाँ आम तौर पर जांच के अधीन होती हैं और उसके समग्र प्रदर्शन के आधार पर आम तौर पर निर्णय लिया जाता है कि क्या उसकी सेवाओं को जारी रखा जाना चाहिए और उसकी पुष्टि की जानी चाहिए, या उसे सेवा से मुक्त किया जाना चाहिए। ... "

16. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिवीक्षा का पूरा उद्देश्य नियोक्ता को परिवीक्षाधीन के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने और किसी विशेष पद के लिए उसकी उपयुक्तता का परीक्षण करने का अवसर प्रदान करना है। इस तरह की कवायद भर्ती की प्रक्रिया का एक आवश्यक हिस्सा है और इसे हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। लिखित परीक्षा और साक्षात्कार केवल एक उम्मीदवार की किसी विशेष नौकरी में सफलता की संभावना का अनुमान लगाने का प्रयास है। उपयुक्तता की वास्तविक परीक्षा कर्तव्यों का वास्तविक प्रदर्शन है जिसे उम्मीदवार के शामिल होने और काम करना शुरू करने के बाद ही लागू किया जा सकता है।

17. इस तरह का अभ्यास निस्संदेह व्यक्तिपरक है, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 1 का तर्क है कि परिवीक्षाधीनों की पुष्टि केवल वस्तुनिष्ठ सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। हालांकि मात्रात्मक पैरामीटर स्पष्ट रूप से उचित हैं, लेकिन वे अपने आप में भविष्य के प्रदर्शन के अपूर्ण संकेतक हैं। गुणात्मक मूल्यांकन और गैर-मात्रात्मक कारकों का समग्र विश्लेषण वास्तव में आवश्यक है। केवल इसलिए कि प्रत्यर्थी नं. 1 के एसीआर को लगातार 'अच्छा' चिह्नित किया गया था, यह उसे सेवा में बने रहने का अधिकार देने का आधार नहीं हो सकता है।

18. इसके अलावा, एक परिवीक्षाधीन और एक पुष्ट कर्मचारी की समाप्ति के बीच एक सूक्ष्म, फिर भी मौलिक अंतर है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि राज्य किसी भी मामले में मनमाने ढंग से कार्य नहीं कर सकता है, फिर भी दोनों के बीच न्यायिक दृष्टिकोण में अंतर होना चाहिए। जबकि एक पुष्ट कर्मचारी के मामले में संविधान के अनुच्छेद 311 या सेवा नियमों के तहत संरक्षण को देखते हुए न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा अधिक व्यापक होगा, लेकिन ऐसे परिवीक्षाधीनों के मामले में यह सच नहीं हो सकता है, जिन्हें परीक्षण के आधार पर काम करते समय इस तरह के संरक्षण (ओं) से वंचित किया जाता है।

19. परिवीक्षाधीनों को पुष्टि होने तक रोजगार में बने रहने का कोई अक्षम्य अधिकार नहीं है, और यदि उन्हें अनुपयुक्त पाया जाता है तो उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा राहत दी जा सकती है। यह केवल मामलों की एक

बहुत ही सीमित श्रेणी में है कि ऐसे परिवीक्षाधीन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के तहत सुरक्षा की मांग कर सकते हैं, जैसे कि जब उन्हें इस तरह से 'हटा' दिया जाता है जो वैकल्पिक क्षेत्रों में उनकी भविष्य की संभावनाओं को पूर्वाग्रहित करता है या उनके चरित्र पर आक्षेप लगाता है या उनके संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। 'कलंकित' हटाने के ऐसे मामलों में केवल सुनवाई का एक उचित अवसर शून्य है। कुछ समय पहले ***परशोतम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ*** [6] के मामले में एक संविधान पीठ ने कहा था किः

> "28.... संक्षेप में, यदि सेवा की समाप्ति अनुबंध से प्राप्त अधिकार या सेवा नियमों पर आधारित है, तो प्रथम दृष्टया, समाप्ति कोई दंड नहीं है और इसके कोई बुरे परिणाम नहीं हैं और इसलिए अनुच्छेद 311 आकर्षित नहीं होता है। लेकिन यदि सरकार को अनुबंध द्वारा या नियमों के तहत, बर्खास्तगी या हटाने या रैंक में कमी की सजा देने के लिए निर्धारित प्रक्रिया से गुजरे बिना रोजगार को समाप्त करने का अधिकार है, तो भी सरकार नौकर को दंडित करने का विकल्प चुन सकती है और यदि सेवा की समाप्ति दुराचार, लापरवाही, अक्षमता या अन्य अयोग्यता पर आधारित होने की मांग की जाती है, तो यह एक सजा है और अनुच्छेद 311 की आवश्यकताओं का पालन किया जाना चाहिए।

20. प्रत्यर्थी संख्या. 1 की सेवाओं की समाप्ति के आदेश में कहा गया है कि "राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर ने सभी प्रासंगिक अभिलेखों की जांच करने के बाद यह राय व्यक्त की है कि श्री वेद प्रिया ने अपने अवसरों का पर्याप्त उपयोग नहीं किया है और अन्यथा राजस्थान न्यायिक सेवा में परिवीक्षाधीन के रूप में संतुष्टि देने में भी विफल रहे हैं। इन सामग्रियों से यह स्पष्ट है कि न तो कोई विशिष्ट कदाचार प्रत्यर्थी संख्या 1 को जिम्मेदार ठहराया गया है और न ही कोई आरोप लगाया गया है। आदेश परिवीक्षा की अवधि के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 1 के प्रदर्शन के समग्र मूल्यांकन पर आधारित है, जो संतोषजनक नहीं पाया गया था। ऐसा निष्कर्ष जो परिवीक्षाधीन की सेवाओं को समाप्त करने के लिए एक वैध आधार हो सकता है, संविधान के अनुच्छेद 311 के संदर्भ में जांच कराने की गारंटी नहीं देता है। इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से यह आरोप लगाना सही नहीं है कि यह उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों के बाद अभियोग का मामला था।

21. यह सच है कि किसी आदेश का रूप यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण नहीं है कि वह सरल है या दंडात्मक। किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सेवा समाप्ति का आदेश भले ही निर्दोष रूप से लिखा गया हो, लेकिन इसका उद्देश्य परिवीक्षाधीन अधिकारी को दंडित करना भी हो सकता है और उस स्थिति में यह निस्संदेह संविधान के अनुच्छेद 311 का उल्लंघन होगा। इस तरह के आदेश की न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया में न्यायालय हमेशा यह पता लगाने के लिए पर्दा उठा सकता है कि क्या आदेश दंडात्मक परिणामों के साथ परिवीक्षाधीन से मिलने के लिए था या नहीं। यदि न्यायालय को लगता है कि आदेश के पीछे वास्तविक उद्देश्य अधिकारी को 'दंडित' करना था, तो वह सुनवाई के उचित अवसर के अभाव में हमेशा इसे रद्द कर सकता है।

22. वर्तमान मामले में यह निष्कर्ष निकालने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि हटाने के पीछे की प्रेरणा कोई आरोप था। इसके बजाय, यह नियमित पुष्टि अभ्यास था। परिवीक्षाधीन अवधि के दौरान प्रदान की गई सेवाओं का मूल्यांकन 92 अन्य लोगों के साथ पहले प्रत्यर्थी के कार्यकाल के अंत में किया गया था सतर्कता

रिपोर्ट न केवल प्रत्यर्थी संख्या 1 याचिकाकर्ता, लेकिन कम से कम दस अन्य उम्मीदवारों के लिए भी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उद्देश्य यह सत्यापित करना नहीं था कि पहले प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोप साबित हुए थे या नहीं, बल्कि केवल यह पता लगाने के लिए था कि क्या न्यायाधीश से अपेक्षित ईमानदारी के उच्च मानक को देखते हुए, उसकी उपयुक्तता पर पर्याप्त कारण या संभावित बादल थे।

23. सतर्कता रिपोर्ट से पता चलता है कि जिन कारकों ने प्रशासनिक समिति या पूर्ण न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 1 की पुष्टि नहीं करने के लिए प्रेरित किया, उनमें से एक स्वापक औषधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम के तहत मामलों में जमानत देने की कार्रवाई थी। यह आरोप नहीं लगाया गया है और न ही यह सच हो सकता है कि पहले प्रत्यर्थी ने अवैध संतुष्टि या किसी अन्य बाहरी विचार के कारण स्वापक औषधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम मामलों में जमानत दी थी। हमारे सामने उनके द्वारा लिया गया रुख यह है कि जमानत 'न्यायसंगत और मानवीय विचारों' को ध्यान में रखते हुए दी गई थी। हम इस तरह के स्पष्टीकरण में कोई योग्यता नहीं पाते हैं। समता के प्रयोग का प्रश्न तभी उत्पन्न होता है जब न्यायालय को स्पष्ट रूप से या निहितार्थ द्वारा अधिकारिता प्रदान की जाती है। प्रत्यर्थी संख्या. 1 से स्वापक औषधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 36(3) के बारे में जानकारी होने की अपेक्षा की गई थी, जो स्वापक औषधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम मामलों में सत्र न्यायाधीश या अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के पद से नीचे के न्यायिक अधिकारी की क्षमता को स्पष्ट रूप से हटा देती है। इसलिए, प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय ने न्यायोचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी संख्या 1 लापरवाही से कार्य करने के लिए प्रवण था या शक्ति को हड़पने की प्रवृत्ति थी जो कानून में निहित नहीं है। यह एक परिवीक्षाधीन न्यायिक अधिकारी की उपयुक्तता निर्धारित करने के लिए एक प्रासंगिक कारक था।

24. अन्यथा भी, यह सच नहीं हो सकता है कि सिर्फ इसलिए कि रिकॉर्ड पर असंगत विचारों के कुछ आरोप मौजूद थे, उच्च न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को सरल तरीके से समाप्त करने से रोक दिया गया था, जबकि वह परिवीक्षा पर था। । परिवीक्षाधीन का असंतोषजनक प्रदर्शन और परिवीक्षा अवधि के अंत में सेवा का परिणामी वितरण, आवश्यक रूप से इस तथ्य से प्रभावित नहीं हो सकता है कि इस बीच परिवीक्षाधीन को विशिष्ट कदाचार, दुर्व्यवहार या दुर्व्यवहार के लिए जिम्मेदार ठहराने वाली कुछ शिकायतें थीं। यदि सेवा समाप्ति के आदेश की उत्पत्ति कदाचार के किसी विशिष्ट कार्य में निहित है, परिवीक्षा अवधि के दौरान कर्तव्यों के सभी संतोषजनक निष्पादन की परवाह किए बिना, न्यायालय छिपे हुए कारण को उजागर करने के लिए अपनी पहुंच के भीतर होगा और यह अभिनिर्धारित करेगा कि समाप्ति का सरल आदेश, वास्तव में, जांच के माध्यम से आरोप(ओं) स्थापित किए बिना परिवीक्षाधीन को दंडित करने का इरादा रखता है। हालांकि, जब नियोक्ता किसी विशिष्ट उदाहरण को नहीं उठाता है और परिवीक्षा की अवधि के दौरान सभी प्रदर्शन के आधार पर अपनी राय बनाता है, तो कार्रवाई का सिद्धांत प्रकृति में दंडात्मक होने के कारण आकर्षित नहीं होगा। इस प्रकार परिवीक्षाधीन पर यह साबित करने की जिम्मेदारी होगी कि उसके खिलाफ की गई कार्रवाई दंडात्मक विशेषताओं की थी।

25. कुछ और भी है जिस पर विद्वत खण्ड पीठ ध्यान देने और सुलह करने में विफल रही। विवादित फैसले के पृष्ठ 22 पर, यह कहा गया है कि "समिति के समक्ष उपलब्ध सामग्री पर विचार करने पर, समिति ने

यह सिफारिश करने का संकल्प लिया कि याचिकाकर्ता वेद प्रिया पुष्टि के लिए उपयुक्त नहीं है", इसके अतिरिक्त, यह कहा गया था कि "शिकायतों के संबंध में कुछ संदर्भ दिए गए हैं..... जो प्रत्यर्थी के अनुसार समिति द्वारा अंतिम निर्णय लेते समय विचार किया गया था।" इससे पता चलता है कि समिति के समक्ष, यदि पर्याप्त नहीं तो कम से कम कुछ सामग्री विचाराधीन थी। हालांकि, पृष्ठ 24 पर बाद में खंड पीठ ने कहा कि "ऐसी किसी भी सामग्री का अभाव था जो निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता कर सके" और यह कि इस तरह का निर्णय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा।

26. चूंकि प्रत्यर्थी संख्या. 1 यह स्थापित करने में विफल रहा है कि उच्च न्यायालय ने किसी परिभाषित दुराचार के लिए उसे अभिप्रेत किया है या वास्तव में दंडित किया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक पक्ष पर उच्च न्यायालय का उद्देश्य उपयुक्तता का सत्यापन करना था और प्रथम प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोपों की जांच नहीं करना था। स्वतंत्र रूप से भी, हम यह नहीं पाते हैं कि आधार आरोप था, लेकिन यह प्रत्यर्थी के सेवा रिकॉर्ड के समग्र मूल्यांकन पर आधारित था। यहां तक कि एक प्रभाव-आधारित दृष्टिकोण लेते हुए, हम यह महसूस नहीं करते हैं कि गैर-पुष्टि का क्रम या पूर्ववर्ती परिस्थितियां प्रत्यर्थी को पूर्वाग्रहित करेंगी, जो एक उच्च प्रक्रियात्मक आवश्यकता के योग्य है।

निष्कर्ष

27. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, अपीलों की अनुमति दी जाती है। उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया गया है और दिनांक 30.09.2004 के निर्वहन का आदेश जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 की सेवाओं को परिवीक्षा के दौरान वितरित किया गया था, इसके द्वारा अनुमोदित है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

अंकित ज्ञान अपीलों की अनुमति दी गई।

.

1. (2012) 6 एससीसी 357
2. (1974) 2 एससीसी 831
3. (2013) 3 एससीसी 607
4. (2010) 8 एससीसी 155
5. (2011) 4 एससीसी 447
6. एआईआर 1958 एससी 36

दिव्या कुमारी की देखरेख में, अधिवक्ता सरवजीत सिंह द्वारा अनुवादित।

.